ओम प्रकाश वाल्मीकि और जूठन

डॉ. मकरन्द भट्ट,

राजकीय पी.जी. महाविद्यालय, चिमनपुरा

उत्तर आधुनिकता के दौर में हिन्दी साहित्य के केन्द्र में स्त्री विमर्श और दलित विमर्ष की व्यापक चर्चा रही है। स्त्री विमर्श के क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में महिला लेखन सामने आया है। उसमें कुछ महत्त्वपूर्ण रचनाएँ भी उभर कर सामने आयी हैं, जिनका मूल्यांकन होना शेष है। दलित विमर्श के क्षेत्र में भी विगत वर्षों में प्रचुर लेखन आया है। हंस के सम्पादक राजेन्द्र यादव ने अपने विशेषांकों के माध्यम से स्त्री विमर्श और दलित विमर्श की मुहिम छेड़ी, जिसने एक आन्दोलन का रूप ले लिया उसी का परिणाम है कि इन दोनों प्रसंगों पर बहुत कुछ कहा जा रहा है, सोचा जा रहा है, लिखा जा रहा है।

प्रस्तुत प्रसंग में दलित विमर्श की एक सशक्त रचना जूठन[1] की चर्चा की जा रही है। देखा जाय तो यह रचनाकार ओम प्रकाश वाल्मीकि की आपबीती कहानी है। यह उनकी आत्मकथा है, जो किसी उपन्यास से कम रोचक नहीं है। दलित लेखन के माध्यम से एक जबरदस्त स्वर उभर कर आया है कि दलित विमर्श के अंतर्गत दलित लेखकों को ही मान्यता प्रदान की जानी चाहिए क्योंकि उन लोगों का जीवनानुभव प्रामाणिक है, तीक्ष्णता लिये हुए हैं।

ओम प्रकाश वाल्मीकि कहते हैं–**''दलित जीवन की पीड़ाएँ असहनीय और अनुभव दग्ध हैं। ऐसे अनुभव जो साहित्यिक अभिव्यक्ति में स्थान नहीं पा सके। एक ऐसी समाज–व्यवस्था में हमने साँसें ली हैं, जो बेहद क्रूर और अमानवीय हैं। दलितों के प्रति असंवेदनशील भी।''**[2]

ओम प्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा जूठन, इस पैमाने पर खरी उतरती है। लेखक ने अपने बाल्यकाल, अपने माता–पिता का जीवन और मुजफ्फरनगर के पास के बरला कस्बे में रहने वाले दलितों की जिन्दगी का एक प्रामाणिक दस्तावेज सामने रखा है। अपने व्यक्ति चरित्र को केन्द्र में रखते हुए लेखक ने बड़ी शिद्दत के साथ अनुभव की आँच अपने पाठकों तक पहुँचाई है। दलितों का जीवन आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से गुलामों से भी बदतर जीवन था। सवर्णों द्वारा किसी भी दलितों को बेगार के लिये पकड़ा जाना एक आम बात थी। पुलिस का डंडा इन निरीह दलितों पर बड़ी क्रूरता से पड़ता था। उन्हें सबके सामने बेइज्जत करना, अमानुषिक यंत्रणाएं देना, लॉकअप में बन्द रखना एक आम बात थी। दलितों की बस्ती गाँव और कस्बे से अलग एक नारकीय बस्ती हुआ करती थी– **अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते–बिल्ली, गाय–भैंस को छूना बुरा नहीं था, लेकिन**

यदि चूहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इनसानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपयोग खत्म। इस्तेमाल करो, दूर फेंको।[3] उसमें **गन्दगी, गलाजक, हीनता, दमन, अत्याचार** आदि ने मिलकर नरक का एक रोमांचक अनुभव खड़ा कर दिया था। लेखक ने अपने परिवेश का चित्रण इस सूक्ष्मता और विस्तार से किया है कि वह पाठक को अनुभव के उस संसार में डुबो देता है।

ओम प्रकाश वाल्मीकि अपने गाँव के स्कूल की कहानी कहते हैं। स्कूल के सवर्ण शिक्षक और ऊँची जाति वाले घरों के बच्चे कैसे जुल्म ढाते थे, यह वाल्मीकि की स्मृति में जैसे ताजा अनुभव हैं, स्कूल जाते ही सामने के मैदान

को झाड़ू से साफ करना, धूप में पसीना बहाते रहना और फिर सबसे दूर बैठकर शिक्षक की पढ़ाई हुयी चीजों को पकड़ना और समझना एक ऐसा अनुभव है जो कोमल मति बालक की चेतना पर गहरे घाव की भाँति ताजा बना हुआ है। ओम प्रकाश वाल्मीकि की इस आत्मकथा में शादी ब्याह के मौके पर सवर्ण घरों से दलित स्त्री, पुरूषों और बच्चों का जूठन बटोर कर लाना और उसे चाव से खाना एक आम बात थी। इसका वर्णन भी वाल्मीकि जी करते हैं–**''शादी–ब्याह के मौके पर जब मेहमान या बाराती खाना खा रहे होते तो चूहड़े दरवाजे पर बड़े–बड़े टोकरे लेकर बैठ जाते थे। बारात के खाना खा चुकने पर जूठी पत्तलें उन टोकरों में डाल दी जाती थीं, जिन्हें घर ले जाकर वे जूठन इकट्ठी कर लेते थे।''4**

पर्वों और त्योहारों के नाम पर दलितों के देवी देवता सवर्ण हिन्दुओं के देवी देवताओं से भिन्न हुआ करते हैं। दीपावली पर या जन्माष्टमी पर उत्सव के नाम पर प्रेत पूजा और चुड़ैल पूजा का चलन था। रोग और बीमारी से ग्रस्त होने पर भूतप्रेत उतारने वाले ओझा को बुलाकर प्रेत बाधा को दूर करके इलाज कराना आम परिपाटी थी। कुल मिलाकर आजादी प्राप्त होने के बावजूद भी दलितों की जिन्दगी पर सवर्ण समाज के सम्पन्न तबके के इतने अन्याय और अत्याचार होते थे कि उसे एक धिक्कार भरी जिन्दगी ही कहा जा सकता है।

ओम प्रकाश वाल्मीकि के जीवन में बरला कस्बे की जिन्दगी को पीछे छोड़कर पढ़ाई के लिए देहरादून आने का प्रसंग है। गाँव के उस दमघोंटू वातावरण से बाहर निकल कर लेखक जब देहरादून के खुले वातावरण से जुड़ता है, तो उसे जिन्दगी को एक बड़े फलक पर देखने और जीने का अवसर मिल जाता है, हालाँकि अभाव अब भी थे। लेकिन तब भी छोटे छोटे ट्यूशन पढ़ा कर अपने लिये साधन जुटाने का प्रसंग लेखक के भीतर आत्म विश्वास की भावना भरता है। यहीं उसकी भेंट स्कूल में अन्य सहपाठियों से होती है जो उसके प्रति आत्मीयता का भाव रखते हैं और यहीं से इस दलित कथा जूठन के नायक की जिन्दगी नया मोड़ लेती है। ओम प्रकाश वाल्मीकि किस तरह देहरादून की ऑर्डनेंस फैक्ट्री में चुना जाता है। उसे वजीफा मिलने लगता है फिर तो जैसे उसके जीवन को पंख लग जाते हैं। देहरादून का प्रशिक्षण पूरा कर वह उच्चतर प्रशिक्षण के लिए जबलपुर जाता है और जबलपुर की ट्रेनिंग पूरी कर उसे फिर बम्बई जाने का अवसर मिलता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि में किताबों की भूख आरम्भ से ही थी। अपनी तकनीकी शिक्षा के अलावा उसका साहित्य प्रेम उसे पुस्तकों की दुनिया में ले जाता है। धीरे–धीरे उसने **रवीन्द्रनाथ** और **कालिदास** जैसे रचनाकारों को पढ़ा। **मार्क्सवाद** से उसका परिचय हुआ जिससे उसका सोच और चिन्तन बदलने लगा। वजीफे से उसको जो पैसा मिलता उसमें से कुछ न कुछ बचा कर अपने पिता को मनीऑर्डर से नियमित रूप से भेजता रहता। ओम प्रकाश वाल्मीकि की यह संघर्षकथा बड़ी रोचक, रोमांचक और साहस तथा आस्था की कहानी है।

ओम प्रकाश वाल्मीकि ने देहरादून में उच्चपदस्थ अधिकारी के साथ–साथ साहित्य की दुनिया में अपनी पहचान बनाई। आलोचकों और अध्येताओं ने उनकी लेखन की शक्ति का लोहा माना और वे उस भद्र समाज के बीच सम्मान का जीवन जीने लगे जो उनका चिरकालिक स्वप्न था।

दलित लेखन की यह पुस्तक कलेवर में छोटी है किन्तु इसमें गहराई का आयाम पाठक को बहुत दूर तक ले जाता है। अपने समाज के बारे में सोचने की प्रचुर सामग्री यह पुस्तक हमें देती है। अब भी दलित वर्ग का जीवन पिछड़ेपन गरीबी, अन्धविश्वास, अशिक्षा और गलाजत से मुक्त नहीं हुआ है। स्वतंत्र भारत में दलित वर्ग की स्थिति अब भी गरिमा से वंचित और दयनीय

बनी हुई है। इतना विशाल जनसमुदाय अब भी स्वतंत्र भारत के विगत साठ वर्षों की विकास की योजनाओं के बावजूद मूलभूत सुविधाओं से वंचित है। शनैः शनैः राजनीतिक चेतना इस वर्ग को संगठित कर रही है। बदली हुई राजनीतिक परिस्थिति में दलित वर्ग सवर्णों के हाथ से सत्ता छीन रहा है और शासन के शीर्ष पर आसीन होकर दलितों के जीवन को बदलने का प्रयास कर रहा है।

इस उपन्यास में नायक ओम प्रकाश वाल्मीकि के जीवन में आये हुए उत्थान के लिये एक ओर तो लेखक की आगे बढने की चेतना, अध्ययनशीलता, बुद्धि और कौशल का हाथ तो है ही, किन्तु देश में प्रजातन्त्र के प्रयोग से दलितों के उद्धार हेतु जो योजनाएँ लागू की गई हैं उनका लाभ भी दलित समाज को मिलने लगा है। आरक्षण के लाभ से सरकारी सेवाओं में, शिक्षण संस्थाओं में अनेक सुविधाऐं प्रदान की जा रही हैं। शनैः शनैः इनका लाभ दलित वर्ग को मिलेगा और उसकी नियति में एक गुणात्मक परिवर्तन सम्भव होगा।

इस पुस्तक को जूठन शीर्षक देकर लेखन ने दलित वर्ग की जिन्दगी को मानो एक प्रतीक दे दिया है। स्वतंत्र भारत में उसे सवर्णों की दया और कृपा पर नहीं बल्कि अपने स्वाभिमान और अधिकार चेतना के बल पर अपने भविष्य का निर्माण करना है। इस रचना के माध्यम से लेखक ने जिस सहजता से अपने अनुभवों को पुस्तक की सामग्री में ढाला है वह लेखकीय कौशल का उदाहरण है। जूठन की भाषा सहज, गतिशील और प्रवाहपूर्ण है। जिसके आधार पर सफल आत्मकथा का स्थान मिलना स्वाभाविक है।

संदर्भ

1. ''पुस्तक का शीर्षक चयन करने में श्रद्धेय राजेन्द्र जी ने बहुत मदद की। अपने व्यस्त जीवन में से समय निकालकर पांडुलिपि को पढ़ा, सुझाव दिया। 'जूठन' शीर्षक भी उन्होंने ही सुझाया, उनका आभार व्यक्त करना मात्र औपचारिकता होगी। उनके सुझाव और मार्गदर्शन मेरे लिए महत्ता रखते हैं।''

   वाल्मीकि, ओमप्रकाश, जूठन, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2012, नई दिल्ली, भूमिका
2. वही, भूमिका
3. वही पृ. 12
4. वही पृ. 19

Copyright © 2016, Dr. Makarand Bhatt. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.